शब्द–ब्रह्म
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
ISSN 2320 – 0871
17 सितम्बर 2014

पालक का संतान की शिक्षा में योगदान

डॉ. बलवीर सिंह जम्बाल
प्राचार्य
बी.के.एम. कालेज आफ एजुकेशन बलाचोर
जिला शहीद भक्त सिंह नगर
पंजाब, भारत

शोध संक्षेप

किसी भी समाज में संतान की पहली शिक्षिका उसकी माँ और दूसरा शिक्षक उसका पिता होता है। दोनों के तालमेल से ही संतान का बचपन संवरता है। ऐसे अपवाद ही होते हैं जब किसी एक को दोनों की भूमिका निभाना पड़ती है। जब भी संताने बाहरी दुनिया के संपर्क में आती हैं, उनके व्यवहार को देख कर उसकी परवरिश का अनुमान लगाया जता है। यद्यपि यह कोई सही मापदंड नहीं है, फिर भी संतानों के व्यवहार से परिवार तक पहुंचा जाता है। माता-पिता के बाद संतानों को शिक्षा प्रदान करने वाले शिक्षक, आचार्य और गुरु का क्रम आता है। संतानों के व्यवहार को बनाने में शिक्षकों की शिक्षा का भी महत्वपूर्ण योगदान होता है। प्रस्तुत आलेख में इसी पर विचार किया गया है।

प्रस्तावना

शिक्षा का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। इसके अंतर्गत वे सभी बातें आ जाती हैं जो व्यक्ति को प्रभावित करते हुए इस योग्य बनाती हैं कि वह अपने जीवन तथा समाज के लिए उचित कार्यों को उचित समय पर कर सके। ये कार्य देश काल तथा परिस्थितियों के अनुसार बदलते रहते हैं। इन्हें स्थाई रूप से निश्चित नहीं किया जा सकता। ब्राउन (ठतवूद) का मत है कि "शिक्षा चैतन्य रूप में एक नियंत्रित प्रक्रिया है, जिसके द्वारा व्यक्ति के व्यवहार में परिवर्तन किया जाता है।" टैगौर का मत है, "शिक्षा वह है जो जीवन की सम्पूर्ण सत्ता के साथ समन्वय स्थापित करने की शाक्ति देती है"। जेम्स का मानना है कि " शिक्षा अर्जित कार्य सम्बन्धी अर्जित आदतों का संगठन है जो व्यक्ति को उसके भौतिक और समाजिक वातावरण में उचित स्थान देता है। अरस्तु के अनुसार "शिक्षा स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मस्तिष्क का निर्माण है"। प्लेटो का विचार है कि "शिक्षा का अर्थ है शरीर और आत्मा को सब वस्तुओं की पूर्णता देना जिनके प्रति वे संवेदनशील होते हैं। कान्ट का मत है कि "शिक्षा व्यक्ति की उन सब पूर्णता का विकास है जिसकी उसमें क्षमता है। रूसो का विचार है कि "माता एक सच्ची परिचारिका है और पिता एक सच्चा अध्यापक है"। पेस्टोलाजी का कहना है कि "घर प्यार और स्नेह का केन्द्र है, शिक्षा के लिए सर्वोत्तम स्थान है और बच्चे का पहला स्कूल है। क्रेमिनियस का विचार है कि "पहले छः वर्ष एक बच्चा माता के घुटनों से चिपक कर ही सीखता है।

संतान की शिक्षा

अपनी संतान के अंतर्मन को गढ़ने का कार्य यदि माँ करती है तो पिता उसे बाह्य संसार से

अवगत कराता है। आज की भागदौड भरी जिंदगी में जब दोनों को ही आजीविका की गाड़ी खींचना है तो कई बार संतान की परवरिश में कुछ कमी रह जाती है। इसकी प्रतिपूर्ति घर के बड़े-बुजुर्ग दूसरे रूपों में करते है। जहां संयुक्त परिवार हैं, वहाँ तो कठिनाई नहीं है, लेकिन जहाँ एकल परिवार है, वहाँ पर संतान के पालन-पोषण की जिम्मेदारी दोनों पर आ जाती है। दोनों ही मिलकर एक संतान को सभ्य नागरिक बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करते हैं। माता-पिता के आपसी व्यवहार का असर संतान पर पड़े बिना नहीं रहता।

एक पालक अपनी संतान के मानसिक विकास में सहायता करता है। वह .बच्चे को अपनी संस्कृति का पाठ पढ़ाता है। धीरे-धीरे उसे सम्बन्धों का ज्ञान होता है। दोनों मिलकर उसे शारीरिक रूप से मजबूत बनाते हैं। समाज से व्यवहार के दौरान उसे सही और गलत का भान कराते हैं। माँ की पाठशाला से ही उसके व्यक्तित्व को आकार मिलना प्रारम्भ हो जाता है। अच्छी आदतों जैसे सहनशीलता, सच्चाई, चोरी न करना, जीवन में सकारात्मक दृष्टिकोण इत्यादि भावनाओं का विकास किया जता है। माता-पिता के एक दूसरे को दिए जाने वाले सम्मान से वह दूसरों के प्रति आदर भाव रखना सीखता है। वह अपने पाल्य के व्यवहार को देख कर कठोर मेहनत का पाठ सीखता है। कठिन समय में हिम्मत न हारने के गुणों का अर्जन करता है। वह अपनी माँ से करुणा के गुण को आत्मसात करता है।

विद्यालय में माता-पिता की संतान विद्यार्थी की भूमिका में आ जाती है। संतान के कोमल मन पर विभिन्न प्रकार की शिक्षा अंकित होने लगती है। अब तक जो संतान एक विशेष प्रकार के वातावरण में थी, उसे बिलकुल भिन्न वातावरण में भेज दिया जाता है। वहाँ अन्य बच्चों के साथ व्यवहार करना सीखता है। उसके व्यक्तित्व को एक नया अकार मिलना प्रारंभ होता है। वह बाहर के सुख-दुःख, हर्ष-विषाद से परिचित होता है। उसमें वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास होता है। वह अपने आसपास की वस्तुओं का अवलोकन कर अपने व्यवहार को निर्धारित करता है। बचपन के संस्कार आख़िरी तक काम देते हैं। जीवन और कुछ नहीं संस्कारों के संचय का स्थान है। शुभ संस्कारों के रोपण की जिम्मेदारी माता-पिता की है। उससे ही समाज के उत्थान और पतन की दिशा निर्धारित होती है। दूसरी और यह भी उतना ही सच है कि माता-पिता के ऋण से कोई संतान मुक्त नहीं हो सकती। उसके लिए एक मात्र मार्ग यही है कि जो भी गृहस्थ जीवन में प्रवेश करे, वह अपने ही सामान श्रेष्ट नागरिकों को तैयार करे। इससे मुक्त होने का यही उपाय है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1.अग्रवाल जे.सी. (2013), शिक्षा के दार्शनिका सामाजिक एंव आर्थिक आधार, अगराः अग्रवाल पब्लिशर 2.माथुर एस एस (2012) शिक्षा के दार्शिनिक तथा सामाजिक आधार, आगरा अग्रवाल पब्लिशर

3.सक्सेना, एन.आर. स्वरूप और संजय कुमार (2013) शिक्षा के दार्शनिक एवं समाज शास्त्रीय सिद्वान्त, मेरठ 4.शर्मा आर. ए. (2013) शिक्षा के दार्शनिक एव सामाजिक मूल आधार, मेरठः आर. ए. बुक डिपो

5.यादव जोगिद्र सिंह (2010) माँ का बलिदान गाजियावाद, माण्डली प्रकाशन